

भारत का विधि आयोग



100वीं रिपोर्ट

सरकार द्वारा और सरकार के विरुद्ध मुकदमेबाजी

सुधार के लिए कुछ संस्तुतियाँ

मई १९८४

मूल्य : (देश में) रु० 26.00 पैसे (विदेश में) पा० 3.03 डा० 9.36

349.541

M452

भारत के विधि आयोग की 8 मई, 1984 को प्रकाशित 100 वीं रिपोर्ट का शुद्धिपत्र

पृष्ठ सं०	पैरा सं०	पंक्ति सं०	के स्थान पर	पढ़ें	
विषय सूची का पृष्ठ	अध्याय 3	1	मुकदमा के लिए प्रस्ताव	मुकदमा-प्रस्ताव	1
„	अध्याय 4	1	द्वारा मुकदमों	द्वारा किए गए मुकदमों	2
1	1.1, तृतीय पैरा	1	उत्तरदायी	उत्तरदायी	7
1	1.3(2)	1	आवश्यकता	आवश्यकता	11
2	1.4	6	विस्तृत	विस्तृत	12
2	2.2	4	ढाल	ढाल	
3	2.4	4	हो जाता है	हो जाता है	
3	2.4	7	कानून स्थान	कानून में स्थान	
4	2.6, दूसरा पैरा	12	निरन्तर वर्तमान	निरन्तर बने	
5	2.7	3	सम्मिलित	सम्मिलित	
5	2.9, दूसरा पैरा	1	जहाँ	जहाँ	
5	2.10	अन्तिम	अवैध था	अवैध था	
6	2.11 पार्श्व शीर्ष	1	आज्ञापरक	आज्ञापरक	
6	2.13	5	तुटि	तुटि	
6	2.13	13	कदाचित	कदाचित	
6	2.13	15	को अक्षमता	को अक्षमता	
7	2.16, पार्श्व शीर्ष	4	निरस	निरस	
7	2.17	1	नीटिस	नीटिस	
13	5.2(iii)	6	बाध्यता	बाध्यता	

विषय-सूची

प्रष्ठ

अध्यय :

1. प्रस्तावना

1

2. सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 80 और सजातीय उपबंध ।

2

3. ओम्बुड्समैन (प्रतिनिधिक) मुकदमा के लिए प्रस्ताव ।

7

4. सरकार द्वारा मुकदमों में गरिबीमा ।

11

5. निष्कर्ष और संस्तुतियों का सारांश ।

12

अध्याय 1

प्रस्तावना

1.1 यह रिपोर्ट सरकार द्वारा और सरकार के विरुद्ध मुकदमेबाजी से संबंधित विधि के कतिपय क्षेत्रों के बारे में है। इस प्रकार के विधि के सम्पूर्ण क्षेत्र के सांगोपांग सर्वेक्षण की बजाय इस रिपोर्ट में प्रस्तुत विषय के उन कतिपय स्थलों पर ही विचार किया जाएगा जिन पर ध्यान देने की त्वरित आवश्यकता है। आयोग द्वारा कुछ समय पूर्व जारी की गई प्रश्नावली में सन्निविष्ट कुछ विषयों पर विधि आयोग में जो चर्चाएं हुईं, उन्हें ही इन संस्तुतियों के उद्भव का कारण माना जाना चाहिए। इन प्रश्नों का विषय क्षेत्र उच्चतर न्यायालयों¹ की संरचना और कार्य विधि ही था।

विस्तार
उद्भव।

और

उस प्रश्नावली का 19वां प्रश्न निम्न था :—

न्यायालय के कैलेंडर की वृद्धि के लिए क्या सरकार के अत्युत्साही विभाग उत्तरदायी है?

इस प्रश्न ने सरकारी मुकदमेबाजी से संबंधित कुछ मामलों पर सोचने की प्रेरणा दी है। सरकारी मुकदमेबाजी के कुछ अन्य भी पक्ष हैं, जिन पर गंभीर विचार की आवश्यकता है।

1.2 न्यायालयों में मुकदमों का एक बहुत बड़ा भाग जिनमें उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालयों में विचाराधीन रिट याचिकाएं विशेष रूप से शामिल हैं, ऐसे मुकदमों का है, जिसमें सरकार एक पक्ष है। इन मुकदमों में पक्षकारों को अनुभव होने वाली देरी अधिकांश में कानूनी तथ्यों के कारण और प्रशासकीय संरचना के कारण है। आयोग ने उपर्युक्त धारणा बना ली है²। आयोग द्वारा जारी की गई प्रश्नावली (उपर्युक्त) पर प्राप्त कुछ उत्तरों से भी इसी धारणा³ को बल प्राप्त होता है। ऐसा मालूम होगा कि सरकारी विभागों के अत्युत्साही विभाग या अधिकारी जिन्हें न तो समुचित प्रशिक्षण प्राप्त है या जिन्हें उचित मार्गदर्शन नहीं प्राप्त है, मामले के वास्तविक बिन्दु को पकड़ नहीं पाते हैं अतः अनजाने ही सरकार के विरुद्ध मुकदमों की संख्या बढ़ाने में जिसे बचाया जा सकता था, अपना योगदान देते हैं⁴। ऐसी ही परिस्थितियों में निदान के लिए आयोग ने यह उचित समझा कि इस तरह की मुकदमेबाजी के कतिपय सुनिश्चित पक्षों पर जिन पर ध्यान देने की भी आवश्यकता है, विचार किया जाए।

विभागों का पहुँच मार्ग।

1.3 इस रिपोर्ट में आगे आने वाले अध्यायों में सरकार के द्वारा अथवा सरकार के विरुद्ध की जाने वाली मुकदमेबाजी के सुसंगत और सुनिश्चित निम्नलिखित विषयों पर ध्यान दिया गया है।

प्रस्तुत रिपोर्ट का वर्ण्य विषय।

- (1) सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 80 (सरकार या जन अधिकारी के विरुद्ध वाद के लिए नोटिस की अनिवार्यता) और अन्य कानूनों⁵ में प्राप्त सजातीय उपबंध।
- (2) ओमबुड्समैन मुकदमों के विभाग की आवश्यकता⁶।
- (3) सरकार द्वारा वादों में काल्परिसीमा⁷।

1. भारत के विधि आयोग द्वारा जारी की गई प्रश्नावली विशेषतः प्रश्न सं० 19।

2. डी० आर० जेरी वि० भारत संघ ए० आई० आर० 1974 उच्चतम न्यायालय 130, 135, 136 अनुच्छेद 25 में प्रकट विचार भी देखें।।

3. विधि आयोग—टीकाओं का संग्रह पृ० 19/4 (सरकार के विरुद्ध वाद लाने के आशय की नोटिस की आवश्यकता)।

4. अध्याय 2 नीचे के अनुच्छेद 2.5 से 2.7 में उद्धृत मुकदमों को देखें।

5. अध्याय 2 नीचे।

6. अध्याय 3 नीचे।

7. अध्याय 4 नीचे।

पूर्व रिपोर्टें।

1.4 इस स्थान पर यह बताना उचित होगा कि सरकार के विरुद्ध किए जाने वाली मुकदमे-बाजी के कई पक्षों पर आयोग की पूर्व रिपोर्टों में विचार किया जा चुका है। इनमें सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 पर रिपोर्ट, परिमीमा विधि, साध्य में सरकारी विशेषाधिकार सरकार, जन सेवकों या जन प्राधिकरणों के विरुद्ध मुकदमा दाखिल करने के आशय की नोटिस देने की अनिवार्य कानूनी उपबंध (सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 80 को छोड़कर) और इसी प्रकार की अन्य रिपोर्टें सम्मिलित हैं। इस समय यह आवश्यक नहीं है कि उन रिपोर्टों से विस्तृत उद्धरण दिए जाएं। प्रस्तुत रिपोर्ट, न्यायालयों में भीड़ के संदर्भ में तुरंत उपाय करने जैसे महत्वपूर्ण प्रश्न, न्यायिक-को न्याय दिलाने तथा कल्याणकारी राज्य की धारणा को ध्यान में रखकर, सरकार द्वारा और सरकार के विरुद्ध मुकदमेबाजी के कुछ महत्वपूर्ण पक्षों पर प्रकाश डालने के लिए हैं।

अध्याय 2

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 80 और सजातीय उपबंध

सिविल प्रक्रिया संहिता,
1908 की धारा
80(1) के अधीन
नोटिस।

2.1 सरकार या जन अधिकारियों के विरुद्ध मुकदमा प्रारंभ किए जाने के पहले पूर्वक्षित वादी द्वारा वाद की नोटिस दिए जाने की अनिवार्यता संबंधी कानूनी उपबंधों पर हम पहले विचार करेंगे। सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 80 (1) के अधीन पूर्वक्षित वादी को सरकार या किसी सरकारी अधिकारी के किसी कार्य जिसे उसने अपनी अधिकारिक हैसियत से किया है, के विरुद्ध वाद दाखिल करने के आशय की 2 माह की पूर्व नोटिस देना अनिवार्य है। यदि ऐसी नोटिस नहीं दी गई है अथवा नोटिस गलत और त्रुटिपूर्ण (यदि दी गई है) है, तो वाद खारिज कर दिया जाएगा। संहिता की धारा 80 (1) में दिए उपबंध का यह सार है। 1976 में इस धारा में संशोधन द्वारा धारा के उपबंध में निःसंदेह कुछ ढील दी गई जिसमें उपधाराएं (2) और (3) जोड़ दी गईं। इन पर अभी ध्यान दिया जाएगा¹। लेकिन इन संशोधनों ने धारा के एक किनारे को ही स्पर्श किया है। इस धारा—एक धारा जिसे आदेशात्मक निर्णीत किया गया और “जिसमें अपवाद या विविक्षा की कोई गुंजाइश नहीं है”—द्वारा उत्पन्न कठिनाइयां निर्बाध और पूर्ण रूप से अब भी जारी हैं। ये कठिनाइयां मुकदमों की अनिवार्य रूप से पूर्व नोटिस देने के कानूनी उपबंध के परिणामस्वरूप उत्पन्न नहीं हैं जितनी कि व्यवहार में सरकार द्वारा प्रत्येक कल्पनीय आधार पर उठाई गई तकनीकी आपत्तियों से उत्पन्न असंख्य विवादों के स्रोत बन जाने के कारण हैं। आपत्तियों की आवृत्तियों का पता हमें इसी अध्याय² में चर्चित मुकदमों से चल जाएगा।

धारा 80(2) में दी गई ढील-परिणाम।

2.2 भारत के विधि आयोग ने सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 पर अपनी अनेक रिपोर्टों में संहिता की धारा 80 के पूर्ण निरसन की संस्तुति की है, लेकिन 1976 के संशोधन अधिनियम ने धारा में मात्र कुछ उपांतरण किए हैं, इसमें यह बात पहले³ ही बता दी है कि धारा में उपधारा (2) और (3) द्वारा दी गई ढील समस्या के कोरों को ही स्पर्श करती है। उपधारा (2) द्वारा यह प्रावधान किया गया है कि तुरंत के मामलों में उपधारा (1) के अधीन नोटिस देने की अनिवार्यता के बावजूद न्यायालय वादों पर विचार कर सकता है। किन्तु यह उपधारा एक हाथ से जो देती है उसे दूसरे हाथ से ले लेती है, क्योंकि धारा में ही दिया गया है कि यदि नोटिस नहीं दी गई है तो न्यायालय ऐसे मामलों में अंतरिम अनुतोष नहीं प्रदान कर सकेगा (जैसे अंतरिम निषेधाज्ञा)।

इतना ही नहीं, इससे भी आगे धारा 80 की उपधारा (2) के उपबंध में यह कानून है कि यदि न्यायालय इस निर्णय पर पहुंचती है कि मामले में कोई त्वरित कारण नहीं था, तो न्यायालय वाद पत्र को वादी को यह कह कर वापस कर देगा कि इसे वादी द्वारा आवश्यक

1. अनुच्छेद 2.2 और 2.3 नीचे।

2. अनुच्छेद 2.5 से 2.10 नीचे।

3. अनुच्छेद 3.1 उपर।

नोटिस देने के उपरान्त प्रस्तुत किया जाए। हमें ऐसा लगता है कि इस प्रकार का उपबंध बहुत ही देरी, खर्चों और कठिनाइयों को जन्म देने वाला है। एक मुकदमा करने वाला मामले की अत्यावश्यकता पर सद्भावपूर्ण विश्वास के आधार पर धारा 80 (1) के अधीन बिना नोटिस दिए मुकदमा दाखिल करता है। न्यायालय उससे इस बात पर सहमत नहीं है कि तुरंत कार्यवाही आवश्यक थी। अतः न्यायालय वाद पत्र वापस कर देता है। अब मुकदमा करने वाले को धारा के अधीन अनिवार्य नोटिस देनी चाहिए और फिर न्यायालय में जाना चाहिए, वकील को फिर से पारिश्रमिक देना चाहिए। फिर से अन्य खर्च करने चाहिए और तब वाद पत्र को फिर से दाखिल करना चाहिए। इस पूरे समय में उसे वांछित अंतरिम अनुतोष नहीं मिल पाएगा। इतना ही नहीं, मुकदमा करने वाला व्यक्ति न्यायालय आने जाने में अपना समय बर्बाद करवाता रहेगा जब तक कि उसे सारवान राहत अपनी कठिनाई से न मिल जाए या वाद ग्रस्त मामले में कोई एक निश्चित तिथि न मिल जाए। संहिता की धारा 80 का उपधारा (2) उपबंध के साथ पढ़ने पर 1976 पूर्व स्थिति से किसी भी प्रकार उन्नत स्थिति में नहीं है।

2.3 अद्यतन धारा 80 की उपधारा (3) के उपबंधों का विचार करें। यह भी 1976 के संशोधन द्वारा लाई गई धारा है। इसमें प्रावधान किया गया है कि यदि नोटिस दिया है तो वाद केवल इस कारण निरस्त नहीं कर दिया जाएगा कि उस नोटिस में कोई त्रुटि या गलती रह गई है। यदि वाद का कारण और अनुतोष नोटिस में पर्याप्त रूप से परिशुद्ध है और वादी का नाम सरकार द्वारा सुनिश्चित किया जा सकता है तो भी वाद केवल इस कारण निरस्त नहीं किया जाएगा कि दी गई नोटिस में अशुद्धि है। यहां फिर भी, यह सीधा-सादा उपबंध जिसकी रचना सद्भावपूर्ण विश्वास से की गई है व्यवहार में विवादों का कारण बन सकती है। क्योंकि मुकदमे करने वाले व्यक्ति का भले ही सद्भावपूर्ण विश्वास हो कि उसने नोटिस में कानून की दृष्टि से आवश्यक सभी तथ्य ठीक तरह दिए हैं फिर भी न्यायालय उससे सहमत हो यह जरूरी नहीं है। इस तरह से नोटिस के अभाव में वाद के निरस्त होने का जोखिम उसे उठाना पड़ता है। इसके अलावा भी इस उपबंध द्वारा प्रतिवादी को (सरकार या जन अधिकारी को) यह सुविधा रहती है कि वह अभिवचन कर सके कि नोटिस में वाद के कारण और अनुतोष परिशुद्ध रूप से नहीं दिए गए हैं। इस उपबंध की रचना ही इस तरह की गई है कि इसके द्वारा विवादों का विस्तृत क्षेत्र पड़ा ही रहता है और उपधारा द्वारा दी गई तनिक सी सुविधा भी समाप्त हो जाती है। सर्वोपरि तो यह है कि यह सरकार के विभागों के अत्युत्साही विभागों द्वारा तकनीकी आपत्तियों को उठाने का खुला निमंत्रण देता है।

धारा 80(3)
परिणाम।

2.4 इस प्रकार के उपबंध जिनके द्वारा नोटिस देना अनिवार्य है, विरुद्ध वास्तविक आपत्ति तो यह है कि यह उपबंध न्यायालय का ध्यान विवाद के सही कारण से हटा देता है और न्यायालय को बाध्य कर देता है कि वह अपना समय अनावश्यक बातों पर नष्ट करे। इस प्रकार न्याय का उद्देश्य ही समाप्त हो जाता है और प्रक्रिया संबंधी उपबंध जो वास्तव में न्याय दिलाने के लिए हैं, न्याय प्राप्ति में बाधा बन जाते हैं। प्रक्रिया संबंधी उपबंधों की रचना न्याय को सुलभ बनाने के लिए होनी चाहिए न कि न्याय प्राप्ति में बाधा बनने के लिए। जब तक कि इस प्रकार के उपबंधों की रचना के पर्याप्त न्यायपूर्ण कारण नहीं हैं इन्हें कानून में स्थान नहीं दिया जाना चाहिए।

सही रास्ता।

2.5 इस संदर्भ में यह बता देना सुसंगत होगा कि अनुभव में यही आता है कि व्यवहार में धारा 80 ने अधिक समस्याओं की ही सृष्टि की है बजाय उनके हल देने के। वस्तुस्थिति तो यह है कि यह धारा किसी समस्या का हल नहीं प्रस्तुत करती है। इस बात पर विधि आयोग ने अपनी पूर्व रिपोर्ट^{1,2} में भी जोर दिया है। कहीं ऐसा न समझ लिया जाए कि 1976 के संशोधन द्वारा स्थिति में सुधार हुआ है इसलिए हमें यह बता देना आवश्यक है कि

वर्तमान निर्णित विधि।

1. भारत का विधि आयोग—27वीं रिपोर्ट।

2. भारत का विधि आयोग—54वीं रिपोर्ट।

हाल के वर्षों के निर्णित विधि को देखने से पता लगता है कि इसने कोई भी सुधार नहीं किया है। दृष्टांत के लिए हम आगे आने वाले कुछ अनुच्छेदों में विगत कुछ वर्षों में धारा पर रिपोर्ट किए गए निर्णयों की चर्चा करेंगे।

नोटिस में औपचारिक
या उसके तामील में
लुटिया। मद्रास और
केरल के मुकदमे।

2.6 मद्रास के एक मुकदमे में¹ सरकार द्वारा यह आपत्ति की गई थी कि केन्द्र सरकार के विरुद्ध रेलवे से संबंधित एक मुकदमे में संबंधित अधिकारी पर व्यक्तिगत रूप से नोटिस की तामील की जानी चाहिए थी। इस आपत्ति को सफलता नहीं मिली और न्यायालय ने निर्णय दिया कि रेलवे के जनरल मैनेजर के एक उत्तरदायी वरिष्ठ अधिकारी के हाथ में नोटिस देना ही पर्याप्त था। यह कहा जा सकता कि है प्रतिवाद अति की सीमा तक तकनीकी था। केरल के एक मुकदमे² से यह स्पष्ट दिखेगा कि मुकदमों में राज्य अधिकारी शुद्ध तकनीकी आधारों पर आपत्ति करने की ज़िद अब भी करते हैं। वास्तव में केरल के मुकदमे में राज्य सरकार की आपत्ति केवल तकनीकी ही नहीं थी अपितु: पूर्णतः भ्रमपूर्ण थी। वादी ने केरल राज्य और इसके कर्मचारी जो एक जीप का ड्राइवर था, पर अपक्रुत्य के लिए नुकसानी के लिए बाद दाखिल किया था क्योंकि जीप चलाने में ड्राइवर द्वारा लापरवाही किए जाने के कारण वादी को चोटें लगी थीं। इसमें वादी ने सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 80 के अधीन अनिवार्य नोटिस कर्मचारी को नहीं दी थी। प्रक्रिया संबंधी इस अनिवार्य आवश्यकता के अनुगमन में वादी की असफलता को प्रतिवाद में मुख्य आधार बनाया गया था—कर्मचारी द्वारा नहीं बरन् राज्य सरकार द्वारा जबकि उसे विधि पूर्ण ढंग से नोटिस दी गई थी।

राज्य ने यह दलील पेश की कि वाद चलाने योग्य नहीं था। क्योंकि कर्मचारी को नोटिस नहीं दी गई थी। भाग्यवश उच्च न्यायालय ने इस दलील को ख़ारिज कर दिया। इसका बाद के तथ्यों से मतलब नहीं था, यद्यपि यह बता देना अनुचित नहीं होगा कि वादी वाद के गुणों के आधार पर भी सफल रहा। यह आश्चर्य की बात है कि नोटिस की कमी की आपत्ति ऐसे पक्ष (सरकार) द्वारा की गई जिसे वाद की विधिवत् नोटिस दी गई थी और जिसका दायित्व अन्य प्रतिवादी से एकदम भिन्न था। नोटिस की कमी की दलील अन्ततः अमान्य कर दी गई यह भाग्य की ही बात थी। लेकिन सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की निर्बन्धन लगाने वाले धारा 80 के उपबन्ध की कठोरता से कष्ट होता ही है। व्यवहार में यह उपबन्ध गंभीर अन्याय की जननी बन गई है। इस उपबन्ध के विरुद्ध न्यायालयों³ द्वारा एक नहीं अनेक बार टीका की गई है। भारत के विधि आयोग के सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 पर लगातार कई सुविचार दृढ़ और तर्क पूर्ण अभिवचन की अवहेलना करते हुए इसका विधि के रूप में निरन्तर वर्तमान रहता अन्याय पूर्ण ही नहीं है बरन् यह न्यायिक समय का बहुत बड़ा भाग व्यर्थ में खर्च होने और सिविल वादों में देरी बरते जाने के कारणों के लिए भी यह उपबन्ध उत्तरदायी है।

राजस्थान का एक
मुकदमा।

2.7 राजस्थान सरकार ने राजस्थान के एक मुकदमे में⁴ जो प्रतिवाद लिया (यद्यपि असफल था) वह सरकार के अति तकनीकी दृष्टि कोण के लिए दृष्टत्य है। इस मामले में वादी ने संपत्ति हस्तांतरण अधिनियम, 1882 की धारा 106 के अधीन और सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 80 के अधीन एक सम्मिलित नोटिस दी थी। सरकार का यह कथन था कि इस प्रकार की सम्मिलित नोटिस नहीं दी जा सकती है। भाग्यवश यह दलील असफल रही। लेकिन यह कष्टप्रद है कि इस प्रकार की पूर्णतः अतर्कसंगत दलीलों को प्रतिवाद के रूप में उठाया जाए। धारा 106 और धारा 80 दोनों में ही यह कहीं नहीं प्रदत्त है कि उपबन्ध के अधीन नोटिसों में अन्य कोई बात नहीं कही जाए। न तो यह कहीं भी कानून में या निर्णित विधि में ऐसा कोई उपबन्ध है कि यदि दो कानूनी उपबन्धों में दो भिन्न मामलों की सूचना देना

1. यूनिनयन आफ इंडिया वि० टी० एन० स्माल इंडस्ट्रीज कॉर्पोरेशन लि० ए० आई० आर० 1981 मद्रास 316, 317—1982 एम० एल० जे० 189।
2. एन० एस० जयनंदन वि० स्टेट ए० आई० आर० 1983 केरल 46 (फरवरी)।
3. दृष्टांत के लिए देखें पंजाब वि० गीता आयरन एंड ब्रास वर्क्स ए० आई० आर० 1978 सु० की० 1608 (1978), 1 सु० कोर्ट 68।
4. रावत हरदेव सिंह वि० राजस्थान राज्य—ए० आई० आर० 1981 राज० 280, 282, 283।

आवश्यक हो तो उसे उस मामले की दो भिन्न-भिन्न नोटिसों द्वारा दिया जाए। वस्तुस्थिति तो यह है कि बम्बई के एक पहले के मुकदमे में¹ यह सुनिश्चित रूप से निर्णय दिया गया है कि नोटिसों सम्मिलित की जा सकती हैं। न ही न्याय साम्या या सद्बिवेक का ही कोई ऐसा सिद्धान्त है, जिसके आधार पर इस प्रकार का पग उठाना आवश्यक हो। राजस्थान के मुकदमे में अन्ततः प्रतिवादी असफल रहा किन्तु उस मुकदमा करने वाले बेचारे वादी के लिए जिसने पर्याप्त समय, शक्ति और पैसे का व्यय प्रतिवाद के लिए किया यह मान सांत्वना की बात हुई और यह न्यायिक समय की व्यर्थ की बरबादी के लिए भी उचित कारण नहीं कहा जा सकता है। राजस्थान के मुकदमे में सरकारी अधिवक्ता यह बताने में असफल रहे कि सरकार पर सम्मिलित नोटिस से किसी भी प्रकार प्रतिकूल प्रभाव कैसे पड़ने वाला है।

2. 8 दिल्ली के एक मुकदमे में² रेलवे अधिकारियों की दी गई नोटिस में नगरीय बुकिंग कार्यालय के स्थान पर मुख्य स्टेशन के नाम का उल्लेख था। आपत्ति की गई कि इस त्रुटि के कारण नोटिस ही विधि मान्य नहीं रही। भाग्यवश यह आपत्ति अमान्य रही। इसी तरह पटना के एक मुकदमे में³ धारा 80 के अधीन नोटिस में रेलवे रसीद का गलत नम्बर दिया गया था जबकि वाद पत्र में सही नंबर दिया गया था। इस आधार पर ही यह कोशिश की गई कि नोटिस विधिमान्य न हो। यह कोशिश भी नाकाम रही।

गलत निवेदन का उल्लेख।

2. 9 उपर्युक्त सभी मामलों में धारा 80 के अन्तर्गत गलत आपत्तियां की गयी थीं। जहां पर धारा 80 के अधीन सही आपत्ति भी की जाती है वहां भी अन्याय हो सकता है। यह मद्रास के एक मुकदमे में⁴ स्पष्ट दृष्टव्य है। रेलवे के विरुद्ध माल भेजने और पाने वाले दोनों की ओर से दावा किया गया था। माल भेजने वाले ने धारा 80 के अधीन नोटिस दी थी किन्तु पाने वाले ने नोटिस नहीं दी थी। उच्च न्यायालय ने यह निर्णय दिया कि धारा 80 के अधीन माल पाने वाले व्यक्ति की असफलता के कारण वाद पत्र निरस्त कर दिया जाना चाहिए और माल भेजने वाला (यद्यपि उसने नोटिस दी थी) दावा लड़ नहीं सकता क्योंकि दावा अलग नहीं किया जा सकता था। यहां पर हम यह बात नहीं कहने जा रहे हैं कि न्यायालय वाद-ग्रस्त बिन्दु पर एक भिन्न दृष्टिकोण अपना सकता था या नहीं। वर्तमान उद्देश्य के लिए हम यह मान सकते हैं कि न्यायालय द्वारा दिया निर्णय धारा के उपबंध के अनुरूप ही था। किन्तु यह बात भी समझ में आनी चाहिए कि यद्यपि कानून का अक्षरशः पालन हुआ था, फिर भी वादीगण के हृदय में न्यायालय छोड़ते समय उनके प्रति हुए घोर अन्याय का भाव रहा ही होगा।

धारा 80 द्वारा किया गया अन्याय।

इस अर्थ में, यह धारा जहां यह सही रूप में लागू की गई है वहां भी अन्याय के भाव की सृष्टि कर सकती है। इसके अतिरिक्त भी केवल एक नोटिस की कमी के कारण वाद पत्र का निरस्त कर दिया जाना यह प्रदर्शित करता है कि गुणों के आधार पर सफल हो सकने वाले मुकदमों का कोई फल नहीं है क्योंकि गुणों के आधार पर सारवान दावा सफल हो सकता है, यह सभी जानते हैं फिर भी इस धारा के कारण निरस्त हो जाता है।

2. 10 उपर्युक्त न्यायिक निर्णय संहिता की धारा 80 के अधीन दी हुई नोटिस के स्वरूप अथवा नोटिस की तामील के ढंग से संबंधित हैं। कानूनी रिपोर्ट इस प्रकार के उदाहरणों से भी भरा पड़ा है, जिनमें नोटिस के विषय वस्तु में त्रुटियां थी। इस संदर्भ में हम इलाहाबाद के⁵ एक मुकदमे की चर्चा कर रहे हैं, जिसमें विवाद धारा 80 के शब्द "वाद का कारण" के अर्थ को लेकर था। यद्यपि उच्च न्यायालय ने यह कहा कि धारा 80 के अधीन नोटिस का अर्थ कोरे रटे रटाए रूप में नहीं लिया जाना चाहिए और न्यायालयों को इस मामले में अति तकनीकी भी नहीं होना चाहिए, मुकदमा अन्ततः निरस्त कर दिया गया था—कारण था कि निरस्त किए जाने का आदेश क्यों अवैध या यह बात नोटिस में नहीं दी गई थी।

धारा 80 के अधीन नोटिस में विषय वस्तु की त्रुटि।

1. रावाबाई वि० महाराष्ट्र राज्य ए० आई० आर० 1973, बम्बई 59।
2. विजय आटोमोबाइल्स दिल्ली वि० यूनिनन आफ इंडिया ए० आई० आर० 1981, दिल्ली-5।
3. विश्वनाथ प्रसाद वि० ईस्टर्न रेलवे—ए० आई० आर० 1978, पटना 223।
4. बुम बुमा टी क० वि० यूनिनन आफ इंडिया (1982) 1 एम० एल० जे० 85-90।
5. कमरुद्दीन वि० यूनिनन आफ इंडिया ए० आई० आर० 1982, इलाहाबाद 169, 170।

धारा 80 आज्ञापत्र
आदेशात्मक ।

2.11 धारा 80 के परिणामस्वरूप होने वाला अन्याय उस समय और भी प्रकट हो जाता है जब हम विचार करते हैं कि तुरन्त के मामलों में निपेठाजा का अनुतोष एक पक्षीय नहीं प्रदान किया जा सकता है, यद्यपि न्यायालय के पास अन्तर्निहित शक्तियां हैं।

धारा 80 के अधीन निपेठाजा के भी मुकदमों में नोटिस पूर्व शर्त है^{1,2}।

सरकारी अधिकारियों
का रुख ।

2.12 यहाँ हमारा उद्देश्य सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 80 पर हाल के मुकदमों के निर्णयों का सार प्रस्तुत करना नहीं है और न तो यह आवश्यक ही है। ऊपर दृष्टांत स्वरूप विधि रिपोर्टों से दिए गए मुकदमों में सुनिश्चित और स्पष्ट विचार देते हैं। इसी प्रकार के अन्य अनेक मुकदमे हो सकते हैं, जिनमें इसी प्रकार की आपत्तियां उठाई गई होंगी और उनमें कुछ सफल रही होंगी और कुछ निष्फल। मुकदमों की प्रक्रिया में सरकारों का सामान्यतया रुख कुछ इस प्रकार रहा है "अगर कानून की पुस्तकों में ऐसा कोई भी उपबंध है, जिसके अधीन मुकदमों को चलाने के अयोग्यता की दलील प्रतिवाद के रूप में ली जा सकती है तो अवश्य लेना चाहिए चाहे मुकदमों के तथ्य उस प्रतिवाद को सत्य सिद्ध करें या न करें और चाहे मुकदमों के तथ्यों के आधार पर ऐसे प्रतिवाद के लिए न्याय की यह मांग हो या न हो।" इस प्रकार के प्रतिवाद की आपत्तियों को उठाने के लिए वास्तव में सरकार के अधिकारियों पर दोषारोपण नहीं किया जाना चाहिए, क्योंकि, उनकी यह धारणा होती है कि यदि उन्होंने हर प्रकार के कल्पनीय प्रतिवाद नहीं लिए तो कदाचित्त वे अपने अधिकारी रूप में उत्तरदायित्व को निमाने में उपेक्षा कर रहे हैं। यहाँ पर यह निर्दिष्ट करना आवश्यक है कि धारा 80 जैसी प्रकृति के उपबन्ध का बना रहना ही इस बात की प्रेरणा देता है कि इस प्रकार का प्रतिवाद हर एक मामले में किया जाए। उपर्युक्त निर्णीत विधि में यह भी देखा जा चुका है कि 1976 में किया गया संशोधन इस स्थिति में किसी प्रकार का सुधार नहीं करता है।

नोटिस का उद्देश्य ।

2.13 यह बात कितनी आश्चर्यजनक है कि सरकार इस प्रकार के प्रतिवाद को उठाना तब भी उचित समझती है जबकि मुकदमों को दाखिल किए जाने की सूचना ही सरकार को नोटिस देने की आवश्यकता की पूर्ति कर देता है। सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 80 का मात्र उद्देश्य यह है कि सरकार को आशयित मुकदमों की पूर्व सूचना मिल जाए जिससे सरकार स्थिति पर विचार करे और यदि उचित हो तो उस तृति को दूर कर दे।³ एक बार यदि मुकदमा दाखिल कर दिया गया तो यह उद्देश्य अपने आप पूर्ण हो जाता है (सरकार को पूर्व सूचना देने का)। इसके पश्चात्, सरकार को कानूनी स्थिति पर विचार करना चाहिए इसकी बजाय कि कानून की अवज्ञा जैसे तकनीकी आपत्तियां उठाई जाए। क्योंकि यह धारा एक प्रतिवाद को जन्म देती है इससे यह आवश्यक नहीं हो जाता कि हर मुकदमे में यह प्रतिवाद उठाया ही जाए। लेकिन ऐसा लगता है कि सरकार ने प्रतिवाद के लिए यह सामान्य रास्ता अपना लिया है। इस धारा का वास्तविक उद्देश्य—सरकार को प्रस्तावित कानूनी कार्यवाहियों की पूर्व सूचना इसलिए दी जाए कि (यदि ऐसी सलाह दी जाती है तो) वह सुधार कर सके—कदाचित्त ही कभी प्राप्त किया गया हो क्योंकि नोटिस वास्तव में जिन मामलों में दी भी गई होती है उस पर भी तुरन्त ध्यान नहीं दिया जाता है। वास्तव में धारा का वास्तविक उद्देश्य धुंधला पड़ गया है और धारा का अक्षमता को छिपाने के नकारात्मक रुख पर ज्यादा जोर हो गया है।

उच्चतम न्यायालय का
विचार ।

2.14 उच्चतम न्यायालय के एक निर्णय⁴ में धारा 80 के वर्तमान उपबन्ध की व्यर्थता की ओर बहुत ही बलपूर्वक ध्यान दिलाया गया है। इसमें कहा गया है कि धारा 80 के अधीन नोटिस देने का आशय है कि राज्य को न्याय पूर्ण समझौता करने के लिए तैयार कर दिया जाए अथवा राज्य सरकार पूर्वक्षित मुकदमा लाने वाले को शिष्टाचार वश ही यह बता दे कि उसका दावा क्यों अमान्य है। न्यायालय ने आगे कहा है कि यह धारा मात्र कर्म-

1. स्टेट आफ त्रिपुरा वि० सजल कांति सेन गुप्ता ए० आई० आर० 1982, गुहाटी-76।
2. स्टेट आफ ओड़ीसा वि० ओड़ीसा इंडस्ट्रीज लि० ए० आई० आर० 1982, ओड़ीसा 24।
3. अनुच्छेद 2.14 नीचे देखें।
4. स्टेट आफ पंजाब वि० गीथा आयरन एंड ब्रास वर्क्स—ए० आई० आर० 1978, उच्चतम न्यायालय 1607, (1978) एस० सी० सी० 68।

कांड बनकर रह गई है क्योंकि प्रशासन अनुत्तरदायी हो गया है और केन्द्रीय विधि आयोग की संस्तुति के बावजूद भी यह कानून संशोधन की धारा 80 को जारी रखने की सदायता को प्राप्त नहीं कर रहा है। संयोगवश यह बनाना रुचिकर लगेगा कि सिविल प्रक्रिया संहिता पर रिपोर्ट (54वीं रिपोर्ट) में विधि आयोग की धारा 80 के निरसन की संस्तुति उच्चतम न्यायालय के 1974 के एक निर्णय¹ में अनुसूचन प्राप्त कर चुकी है।

2.15 उपर्युक्त सारे विचारों को ध्यान में रख कर हम सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 80 के निरसन की संस्तुति बहुत ही बल पूर्वक करते हैं।

सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 80 का निरसन की संस्तुति।

2.16 उपर्युक्त कारणों से ही हम अन्य कानूनी उपबंधों को जिनमें जन प्राधिकरणों के विरुद्ध मुकदमों की नोटिस देना अनिवार्य बनाया गया है, निरसन की संस्तुति करते हैं। यह सारे उपबंध विधि आयोग की एक पूर्व रिपोर्ट² में सुविधा के लिए संग्रहित कर दिये गये हैं।

नोटिस को आवश्यक मानने वाले अन्य कानूनी उपबंधों के निरसन की संस्तुति।

2.17 मुकदमों की नोटिस देने संबंधी कानूनी उपबंधों पर चर्चा समाप्त करने के पूर्व हम यह कहना चाहेंगे कि इस समय इस तरह के उपबंधों का बना रहना अनेक मामलों में, पूर्वोक्त मुकदमा करने वालों को सरकार के विरुद्ध रिट याचिकाएं दाखिल करने की प्रेरणा देता है, जिससे उनकी कानूनी कठिनाई दूर हो सके क्योंकि रिट याचिका के लिए किसी कानूनी नोटिस की आवश्यकता नहीं होती है। अतः इस तरह के उपबंध का हटाया जाना गुणों के आधार पर ही नहीं न्यायपूर्ण भी है। (पूर्वगामी अनुच्छेदों में की गई चर्चा के आधार पर) क्योंकि यह पता उच्चतर न्यायालयों में रिट याचिकाओं की संख्या को घटाने में सहायक सिद्ध होगा।

अध्याय 3

आमबुड्समैन (प्रतिनिधिक) मुकदमा-प्रस्ताव

3.1 हम सरकार से संबंधित मुकदमों के अन्य कुछ पहलुओं पर विचार करना प्रारंभ करते हैं। गत कुछ वर्षों के मुकदमों बाजी के ढर्रे का अध्ययन करने पर यह प्रकट है कि मुकदमों के पक्ष उच्चतर न्यायालयों में पहुंचना अधिक उचित समझते हैं। यह केवल (1) सरकार के उन कार्यों से राहत पाने के लिए नहीं जिन्हें वैध अधिकारों का उल्लंघन कहा जाए अपितु (2) सरकार के उन कार्यों के लिए भी, जिन्हें वैध अधिकारों का उल्लंघन भले ही कहा जाए या न कहा जाए, जिन्हें दुःप्रशासन कहा जा सकता है। इनसे राहत पाने के लिए लोग उच्चतर न्यायालय में जाना अधिक उचित समझते हैं। बाद वाली श्रेणी में आने वाले सरकारी कृत्य अवैधता की सीमा को छूते से हैं। इनमें से कुछ कृत्य अवैध कार्य भी नहीं कहे जा सकते हैं, किन्तु इन्हें "अनौचित्य" कहा जा सकता है जो अवैधता की सीमा से बाहर होते हैं। लेकिन इस तरह से कभी कृत्य चाहे वे ऐसे अन्याय कहे जाएं जिनके लिए कानूनी राहत मिल सकती है या उन्हें प्रशासनिक अनौचित्य कहा जाए जिनसे राहत पाने के लिए न्यायालयों में जाना नहीं चाहिए, न्यायालयों में पहुंच जाते हैं। अधिकारियों की उदासीनता, दमन, कल्पना प्रवणता का अभाव, अकर्मण्यता या भ्रम—ये सभी अथवा ऐसे ही अन्य कारण पक्षों को न्यायालय में राहत पाने के लिए बाध्य कर देते हैं। कभी-कभी पक्षकार दुःसाहसवश न्यायालयों में राहत प्राप्त करने जाते हैं, जबकि उन्हें यह पता होता है कि मामले को न्यायालय में नहीं ले जाना चाहिए। ऐसा करने में उनका उद्देश्य उनके प्रति हुए अन्याय को प्रकट करना अधिक रहता है न कि कानूनी राहत प्राप्त करना।

पृष्ठभूमि।

1. डी० आर० जेरी वि० यूनियन आफ इंडिया ए० आई० आर० 1974, एस० सी० 130, अनुच्छेद 25।

2. भारत का विधि आयोग 56वीं रिपोर्ट (कतिपय कानूनी) उपबंधों के अधीन मुकदमों की नोटिस की अनिवार्यता।

उपयुक्त मशीनरी के विकास की आवश्यकता।

3.2 उक्त पूर्णतः भूमि पर अच्छी तरह विचार करने के उपरान्त हमारा मत है कि कुछ इस प्रकार की मशीनरी के विकास किए जाने की आवश्यकता है, जिससे कि न्यायालयों पर कार्यभार जो वर्तमान परिस्थितियों के कारण है¹ कम किया जा सके और नागरिकों को वैधिक प्रकृति की कठिनाइयों से जल्द और सुस्ते में राहत दिलाई जा सके। इस प्रकार की मशीनरी से न्याय का उद्देश्य अधिक पूर्णता की ओर अग्रसर होगा और उच्चतर न्यायालयों में मुकदमों की बाढ़ को भी रोका जा सकेगा।

प्रशासनिक कृत्यों की दो श्रेणियाँ हैं, जिनके लिए न्यायालयों में सुधार की जाती है²। यदि सांख्यिकी की दृष्टि से कहा जाए तो, पहली श्रेणी में अधिक संख्या में मुकदमों होते हैं। समय के साथ-साथ, ऐसे कृत्य जिनमें शिकायत किए गए अवचार को न्याय कहा जा सकता है और वह अवैध भी है, न्यायालयों के समक्ष अधिक संख्या में आते जाएंगे। उच्चतर न्यायालयों के समक्ष व्यक्ति चाहे अपनी शिकायतें रिट याचिकाओं के रूप में प्रस्तुत करें अथवा जनहित में संलग्न संस्थाएं "जनहित के लिए मुकदमा" की श्रेणी के अन्तर्गत बाद प्रारंभ करें मुकदमों की संख्या में वृद्धि होती ही जाएगी।

प्रातिनिधिक मुकदमों के विभाग का प्रस्ताव।

3.3 हमारे विचार से ऐसे उपायों को विकसित करने की आवश्यकता है जिससे उपर्युक्त वर्णित³ प्रथम श्रेणी में आने वाले मुकदमों को न्यायालय जाने से विरत किया जा सके। यह एक सामान्य अनुभव की बात है कि यदि एक बार मुकदमा प्रारंभ हो गया तो सभी ओर से समय, पैसों और श्रम की वरबादी होती है। यथा संभव प्रशासनिक संयंत्र इस प्रकार कायरत होने चाहिए जिससे सरकार के विरुद्ध अनावश्यक मुकदमोंबाजी से बचा जा सके। इसी उद्देश्य को ध्यान में रख कर हम प्रातिनिधिक मुकदमों के लिए एक ओमबुड्समैन पद के सृजन किए जाने का विचार प्रस्तुत कर रहे हैं। यह एक ऐसा पदाधिकारी होगा जिसके पास न्याय किए जाने योग्य शिकायतों से राहत पाने के लिए पूर्वोक्त मुकदमा करने वाले लोग पहुंच सकेंगे। (आवश्यक नहीं)⁴

संस्तुति की गई योजना की रूपरेखा।

3.4 प्रातिनिधिक मुकदमों के लिए पद के सृजन के बारे में उक्त संस्तुति के कार्यान्वयन के लिए हम चाहते हैं कि कोई विधि बनाये जाए। हमारे मस्तिष्क में जो विस्तृत योजना है उसके लिए हम निम्नलिखित प्रस्ताव प्रस्तुत कर रहे हैं, जिसमें हमारे द्वारा विचार की गई योजना की रूपरेखा है।

कार्यालय और इसका संगठन

(i) प्रातिनिधिक मुकदमों के पदों का सृजन हर एक राज्य द्वारा अपने राज्य में किया जाना चाहिए और केन्द्र सरकार द्वारा प्रत्येक मंत्रालय के लिए, जैसा सुनिश्चित किया जाए, किया जाना चाहिए।

(ii) प्रातिनिधिक मुकदमों के पदों के लिए राज्यों में उच्च न्यायालय का सेवानिवृत्त न्यायाधीश और केन्द्र में उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश होने चाहिए।

(iii) केन्द्र में ऐसे पद के लिए भारत के मुख्य न्यायाधीश से परामर्श लिया जाना चाहिए और राज्यों में उस राज्य के उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश से नियुक्ति के लिए परामर्श लिया जाना चाहिए।

अनुच्छेद 3.4 जारी

(iv) इस पद के लिए नियुक्ति 3 वर्षों के लिए की जानी चाहिए और उच्च न्यायालय के न्यायाधीश को हटाने के लिए संविधान में उल्लिखित तरीकों के अतिरिक्त वह किसी भी प्रकार पद से हटाया नहीं जा सकेगा।

1. अनुच्छेद 3.1 ऊपर।
2. अनुच्छेद 3.1 ऊपर।
3. अनुच्छेद 3.1 ऊपर।
4. अनुच्छेद 3.5 ऊपर देखें।
5. अनुच्छेद 3.3 ऊपर।

(v) जहाँ आवश्यक हो उसकी सहायता के लिए किसी भी आवश्यक संख्या में महा-यकों की नियुक्ति की जानी चाहिए।

कार्य प्रणाली (प्रक्रिया)

(vi) जनता के किसी सदस्य के लिए जिसे भी सरकार के विरुद्ध रिट की कार्यवाही करनी हो, आमबुड्समैन गदारीन व्यक्ति को केन्द्र या राज्य में जिसके विरुद्ध उसकी शिकायत हो, (जैसा उपयुक्त हो), अपनी शिकायत को लिखकर उपयुक्त अनुतोप की सुनिश्चित शर्तों में मांग करते हुए, एक पत्र लिखने की छूट होनी चाहिए। इसके लिए किसी औपचारिक आवेदन पत्र की भी आवश्यकता नहीं होनी चाहिए। (आगे आने वाले अनुच्छेदों में हम सुविधा के लिए जनता के सदस्य को "आवेदक" के नाम से ही वर्णन करेंगे।

(vii) प्रातिनिधिक मुकदमों के विभाग का मामले की उचित जांच करने के बाद आवेदक को अपनी संस्तुति की लिखित सूचना देनी चाहिए जिसकी प्रतिलिपि संबंधित मंत्रालय अथवा विभाग को भी देनी चाहिए।

(viii) प्रातिनिधिक मुकदमों के विभाग का आवेदक को उत्तर संबंधित विभाग का आवेदन प्राप्त कराने की तिथि से 2 माह के भीतर भेज दिया जाना चाहिए। जहां संबंधित मंत्रालय अथवा विभाग से आवश्यक सूचना प्राप्त करने में देरी या अनुपलब्धि के कारण यह संभव न हो, वहां भी आवेदक को दो माह के भीतर इस आशय की सूचना दे दी जानी चाहिए।

आमबुड्समैन मुकदमों के विभाग द्वारा संस्तुति के आधारों को बनाया जाना चाहिए।

(ix) जिन आधारों पर आमबुड्समैन मुकदमों का विभाग संस्तुति करता है उन्हें पर्याप्त विस्तृत होना चाहिए। उसे इतनी शक्ति प्राप्त होनी चाहिए कि वह सरकार या उसके अधिकारी के किसी भी निर्णय, कृत्य या लोप के बारे में संस्तुति कर सके, यदि वह संतुष्ट है कि ऐसा निर्णय, कृत्य या लोप—

(क) विधि के विरुद्ध था; या

(ख) अनुचित, अन्यायपूर्ण, पीड़ा देने वाला या अनुचित रूप से भेदभावपूर्ण था, या ऐसे नियम, कानून या उसके उपबंध या व्यवहार या चलन के अर्धान किया गया था जो स्वयं अनुचित, अन्यायपूर्ण, पीड़ादायक या अनुचित भेदभावपूर्ण था और ऐसी परिस्थितियों में किया गया था जिनमें कानून के अन्तर्गत भी राहत के लिए दावा किया जा सकता था; या

(ग) पूर्णतः या अंशतः कानून की गलती पर आधारित था; या

(घ) विधि की दृष्टि से गलत था; या

(ङ) जिसमें विवेक शक्ति का प्रयोग गलत उद्देश्य के लिए या असंगत आधारों पर या असंगत विचारों को ध्यान में रखकर किया गया है या जहां ऐसे निर्णय सकारण दिए जाने चाहिए थे किन्तु निर्णय के कारण नहीं दिए गए हैं।

(x) प्रातिनिधिक मुकदमों के विभाग को स्वविवेक से किसी भी शिकायत की जांच करने से इन्कार करने, या जांच को रोक देने का अधिकार होना चाहिए—

(क) यदि मामला तुच्छ, महत्वहीन या परेशान करने वाला या सद्भावपूर्ण नहीं है; या

(ख) यदि आरोपों के तथ्य यह दर्शाते हैं कि वाद का कोई कारण नहीं है और उपर्युक्त कोई भी अनौचित्य नहीं किया गया है।

प्रशासनिक मामले :

(xi) सरकार के सभी मंत्रालयों और विभागों को प्रातिनिधिक मुकदमों के विभाग से सहयोग करने और ऐसी सहायता देने की वाध्यता होनी चाहिए जिससे विभाग अपने कर्तव्यों का उचित रूप से निर्वाह कर सके।

(xii) प्रातिनिधिक मुकदमों की वार्षिक रिपोर्ट संसद या राज्य की विधान सभाओं के (यथा आवश्यक) समक्ष प्रस्तुत की जानी चाहिए।

(xiii) संबंधित मंत्रालय या विभाग की वार्षिक रिपोर्ट में इस बात का उल्लेख होना चाहिए कि प्रातिनिधिक मुकदमों के पूर्व वर्ष की रिपोर्ट पर क्या कार्यवाही की गई।

व्यवस्था से छूट

(xiv) उपर्युक्त व्यवस्था ऐसे राज्यों पर लागू नहीं होगी जहां पहले से ही राज्य के कानून के अधीन एक आमबुड्समैन नियुक्त हो चुका है और कार्य कर रहा है¹।

व्यवस्था स्वैच्छिक रहेगी।

3.5 इस समय यह दोहरा देना आवश्यक है कि हमारा यह आशय कभी भी नहीं है कि प्रस्तावित प्रातिनिधिक मुकदमों के विभाग को आवेदन देने की कोई वैधिक अनिवार्यता होगी तभी कोई नागरिक सरकार के विरुद्ध कानूनी कार्यवाही प्रारम्भ कर सकेगा। इस संस्तुति का उद्देश्य केवल नागरिक को एक ऐसा मंच देने की है जहां से यदि उसे परामर्श दिया गया हो, तो पहले अनुतोष प्राप्त करे। इस योजना में नागरिक के लिए कुछ भी आदेशात्मक नहीं है।

जहां तक सरकार का संबंध है उसे अपनी रचना के अन्तर्गत एक ऐसा अधिकारी मिल जाएगा जिससे सरकार आशा कर सकती है कि उसे अनेक मामलों में अविलम्ब, सक्षम और सत्यता पूर्ण परामर्श मिल सकेगा। जिसके कारण उसे मुकदमे बाजी करनी पड़ सकती थी। यदि इस योजना का क्रियान्वयन उचित भाव से किया गया और इसे केवल पंडिताउ या नौकर-शाही ढंग से नहीं अपनाया गया, तो हम ऐसी आशा करते हैं कि यह संस्तुति न्याय प्रणाली के उद्देश्य को पूरा करने, सरकार की छवि को सुधारने और न्यायालयों में मुकदमों की भीड़ को कम करने में अपना योगदान देगी।

प्रातिनिधिक मुकदमों में अपनाया गया मार्ग और न्यायालयों में भीड़ कम करने में इसका संभावित प्रभाव।

3.6 तद्यपि प्रातिनिधिक मुकदमों के विभाग से पहुंचने वाले मामलों में अधिकांश या बहुलांश ऐसे मामलों का होगा जिनमें न्याय करने योग्य वाद विषय होंगे, फिर भी कुछ ऐसे मामले अवश्य होंगे जो अनौचित्य की सीमान्त पर होंगे और जिन्हें ऐसी अवैधता नहीं कही जा सकती, जिसके लिए न्यायालयों में दावा किया जा सके²।

कुछ मामलों में नागरिक या नागरिकों का साह अपनी ऐसी शिकायतों की सुनवाई के लिए उच्चतर न्यायालयों में पहुंचता है जिन मामलों में न्यायालयों द्वारा दिवार किए जाने की उनकी क्षमता के बारे में संदेह हो सकता है। ऐसे मामलों को न्यायालयों में पहुंचने को किसी भी प्रकार रोक नहीं जा सकता है, क्योंकि अपनी भावनाओं को औपचारिक और प्रभाव पूर्ण ढंग से प्रस्तुत करने का यही एक मात्र रास्ता नागरिकों के पास है। इस तरह उन्हें विश्वास है कि इस संस्थान से उसके मामले पर कुछ ध्यान पूर्वक सुनवाई की जाएगी, भले ही अन्त में यह मामला उस संस्थान द्वारा शिकायत के रूप में न ग्रहण की जाए। हमारी संस्तुति के अनुसार इस श्रेणी के मामले प्रातिनिधिक मुकदमों की विचार परिधि के बाहर होंगे ऐसा प्रस्तावित है। निःसंदेह ऐसे मामलों के लिए यदि सरकार कभी आवश्यक समझे तो कोई अन्य प्रशासनिक मशीनरी की रचना कर सकती है।

1. अनुच्छेद 3.7 उपर।

2. उपर अनुच्छेद 3.2 भी देखें।

3.7 हम इस बात से अवगत हैं कि भारत के कुछ राज्यों में राज्य विधान मन्त्रालयों द्वारा पारित कानूनों के अधीन लोकायुक्तों की पहले ही नियुक्ति की जा चुकी है। प्रातिनिधिक मुकदमों के विभाग की नियुक्ति की संस्तुति ऐसे राज्यों के लिए नहीं है। सामान्यतया दुष्प्रशासन के मामले ऐसे नियुक्त लोक आयुक्तों द्वारा ही सुने जाएंगे। यह बात अवश्य है कि सामान्यतया लोकायुक्त को ऐसा अधिकारी समझा जाता है जिसका प्रथम कार्य भ्रष्टाचारों की जांच करना है, लेकिन इसी पद को ऐसे भी कार्य दिए जा सकते हैं जो प्रातिनिधिक मुकदमों के पदों के लिए हमारे द्वारा प्रस्तावित हैं। वास्तव में पाश्चात्य देशों में प्रातिनिधिक मुकदमों के अन्तर्गत सभी प्रकार के दुष्प्रशासन के मामले लिए जाते हैं। यदि आवश्यक हो तो संबंधित राज्य लोकायुक्त संबंधी कानून में उपर्युक्त उद्देश्य की पूर्ति के लिए आवश्यक संशोधन कर सकते हैं। ऐसे राज्यों में लोकायुक्त के साथ ही साथ प्रातिनिधिक मुकदमों के विभाग का सृजन व्यवहार में दोनों के कार्य में अति व्याप्ति कर सकता है तथा नागरिकों के मन में भी कुछ उलझने उत्पन्न कर सकता है। अतः अति व्याप्ति और उलझन की समस्या से बचने के लिए कम से कम इस समय हम ऐसे राज्यों को प्रातिनिधिक मुकदमों के क्षेत्र से बाहर रखना चाहेंगे।

लोकायुक्त का ले राज्य।

3.8 हम संस्तुति करते हैं कि इस अध्याय में की हुई संस्तुति के क्रियान्वयन के लिए संसद को उपर्युक्त कानून का अधिनियमन करना चाहिए। जहां तक संसद को ऐसे कानून बनाने की सक्षमता के बारे में प्रश्न है हमारा मत है कि ऐसे अधिनियम का कुछ अंश संविधान की सातवीं अनुसूची¹ के सिविल प्रक्रिया और न्यायिक प्रशासन के अधीन प्रविष्टियों के अन्तर्गत आएगा और कुछ अंश ऐसे सारवान विषयों के अधीन प्रविष्टियों के अन्तर्गत आएगा जिससे ये विशेष प्रकार के मुकदमों संबंधित हैं।

कानून की संस्तुति।

अध्याय 4

सरकार द्वारा किए गए मुकदमों में परिसीमा

4.1 भारत का परिसीमा विधि सरकार को इसके द्वारा दाखिल किए गए मुकदमों के लिए तीस वर्षों की परिसीमा निर्धारित करता है उस मुकदमे का वाद का कारण चाहे जो भी हो²। यह परिसीमा अधिनियम, 1963 के अनुच्छेद 112 में प्रदत्त है जो केन्द्र या राज्य सरकारों द्वारा दाखिल किए गए सभी मुकदमों पर लागू है। इसमें एक अपवाद अवश्य है जिसका महत्व बहुत कम है और प्रस्तुत उद्देश्य के लिए आवश्यक भी नहीं है।

परिसीमा अधिनियम और सरकार द्वारा मुकदमों में।

सरकार को दिया गया समय प्राइवेट पक्षों को मुकदमे के लिए प्रदत्त समय से कहीं अधिक है। प्राइवेट पक्षों द्वारा दायर मुकदमों में विभिन्न प्रकार की परिसीमा होती है जो वाद के कारण की प्रकृति और अन्य सुसंगत परिस्थितियों पर निर्भर करता है। अधिकांश मुकदमों में जिनका संबंध स्थावर संपत्ति से नहीं होता है, उनमें प्राइवेट पक्षों को निर्धारित की गई परिसीमा तीन वर्ष है। इसके ठीक विपरीत सरकार को एक समान तीस वर्षों की परिसीमा अनुच्छेद 112 के अधीन उपलब्ध है।

4.2 सरकार पर लागू होने वाले कानूनों और प्राइवेट पक्षों को लागू होने वाले कानूनों की यह असमानता इस आधार पर न्याय पूर्ण कही जाती है कि सरकार एक अलग ही प्रकार की विशाल मशीनरी है और सरकार द्वारा मामलों पर विभागों के विभिन्न स्तरों पर विचार करना आवश्यक होता है। अतः इसमें अधिक समय मुकदमों की तैयारी में लगना स्वाभाविक है और आवश्यक भी होता है।

यह असमानता कठिनाईयों की जननी।

1. संविधान की सातवीं अनुसूची समवर्ती विषय 13 और 11क प्रविष्टियां।

2. परिसीमा अधिनियम, 1963 का अनुच्छेद 112।

यह कारण, यह मानते हुए भी कि अत्यन्त ही तर्क सम्भव है, मामले के दूसरे पक्ष को आँखों से ओझल कर देता है और यह दूसरा पक्ष है भावी प्रतिवादी को होने वाली कठिनाईयों का ।

वर्तमान परिस्थिति बहुधा कठिनाईयों को जन्म देने वाली है क्योंकि प्राइवेट पक्ष जिस पर सरकार द्वारा मुकदमा चलाए जाने की सम्भावना है उसे दस्तावेजों की संभाल बहुत लम्बी अवधि तक करनी होती है । परिसीमा विधि की पृष्ठ भूमि में जो कारण हैं वह यह हैं—लम्बे काल के अन्तराल के बाद प्रतिवादी के पास का साक्ष्य जो उसके अधिकार में है वह खो सकता है, साक्षियों की मृत्यु हो सकती है अथवा उनकी स्मरण शक्ति क्षीण होने से मूल्यवान साक्ष्य विनष्ट हो सकता है । वर्तमान भेदभाव पूर्ण उपबन्ध परिसीमा विधि के पीछे उपर्युक्त कारणों और औचित्य की पूर्णतः अवहेलना करता है । इसके अतिरिक्त भी पुराने दावों के पीछे पड़े रहना यह अपने आप में ही अत्याचारों का जनक है । इन्हीं विचारों को ध्यान में रखकर जो सरकार और प्राइवेट पक्षों, दोनों के दावों पर समान रूप से लागू हैं, हमारा मत है कि विधायिका के लिए सरकार को इतना अधिक समय देने के औचित्य को सिद्ध करने के लिए बहुत ही सशक्त कारण चाहिए । हमारा मत है कि इतने पर भी सरकार का पक्षपात करते हुए विशेष व्यवहार करने के लिए कोई औचित्य का कारण नहीं बन पाता है ।

विधि आयोग की पूर्ण रिपोर्ट ।

4.3 विधि आयोग ने परिसीमा अधिनियम, 1963 पर एक विस्तृत रिपोर्ट¹ दी है, लेकिन उस समय इसका ध्यान अधिनियम को निर्णयों के परस्पर विरोध और अन्य इसी प्रकार के सामान्य सामग्री के प्रकाश में पुनरीक्षण करना था । इस समय इस बिन्दु पर जोर आयोग के अन्दर चलने वाले विचारों के फलस्वरूप है । आयोग का ध्यान सरकार द्वारा की जाने वाली मुकदमों बाजी के विषय पर विचार करते समय इस पर गया और रिपोर्ट में तदनु रूप इस पर विचार भी किया गया है ।

संस्तुति ।

4.4 न्यायालयों की कार्य प्रणाली और मुकदमों को जल्द निबटाने के विषय के संदर्भ की परीक्षणोपरान्त हम ऐसा उचित समझते हैं कि इस पक्ष पर अधिक सुनिश्चित रूप से विचार किया जाए ।

हमारी संस्तुति है कि काल की परिसीमा के संबंध में सरकार के साथ विशिष्ट व्यवहार नहीं किया जाना चाहिए । और परिसीमा अधिनियम, 1963 के अनुच्छेद 112 को हटा दिया जाना चाहिए जिससे विशिष्ट व्यवहार समाप्त हो जाए । और सरकार द्वारा किए जाने वाले मुकदमों और दूसरे व्यक्ति या व्यष्टियों द्वारा किए जाने वाले मुकदमों में किया जाने वाला वर्तमान भेदभाव समाप्त हो जाए । हमारे मत में सरकार को दिए जाने वाले लम्बी कालावधि के कारण, बहुत से मामलों में उपेक्षा और उदासीनता का भाव पैदा हो जाता है । प्राइवेट व्यक्ति के मन में यदि यह आशंका बनी रहे कि सरकार द्वारा उसके ऊपर सिविल न्यायालय में लम्बा समय बीतने के बाद भी दावा किया जा सकता है तो इससे व्यक्ति के मन में असुरक्षा का भाव और चिन्ता बनी ही रहेगी और यह बात जन कल्याण के लिए प्रतिबद्ध सरकार के सिद्धान्तों से भी मेल नहीं खाती है ।

अध्याय 5

निष्कर्ष तथा संस्तुतियों का सारांश

5.1 निष्कर्ष रूप में हम यह कहना चाहेंगे कि सरकार के विरुद्ध मुकदमों का विषय बहुत व्यापक है, जिसमें से इस रिपोर्ट² में कुछ पक्षों पर ही विचार किया गया है । इन पक्षों का चयन केवल इसलिए किया गया है कि इनकी न्याय के उद्देश्य से प्रासंगिकता बहुत अधिक थी

1. भारत का विधि आयोग 89वीं रिपोर्ट (परिसीमा अधिनियम, 1963) अनुच्छेद 39.51, 39.52 ।

2. ऊपर अनुच्छेद 1.4 भी देखें ।—

प्रसंगवश, जैसे आमबुड्समैन मुकदमों के एक पद के सृजन की हमारी एक संस्तुति। हम ऐसा विचार करते हैं कि इसके परिणामस्वरूप उच्चतर न्यायालयों में भीड़ कम होगी। अतः इस पर त्वरित उपाय के रूप में विचार किया जाना चाहिए। किन्तु हम इस रिपोर्ट में की गई अन्य संस्तुतियों को भी बराबर महत्व देते हैं। ये संस्तुतियां जिन मामलों पर की गई हैं उनसे संबंधित कानून में यदि सुधार नहीं किया गया तो, यह हमारा मत है कि यह अन्याय को जारी रखता ही होगा।

5.2 सुविधा के लिए इस रिपोर्ट में दी गई संस्तुतियों का सारांश हम नीचे दे रहे हैं: — संस्तुतियों का मा

- (i) सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 80 का जिसमें सरकार को या कर्मचारी या जन अधिकारी को उसके अधिकारी की हैसियत में किए गए कार्य के लिए मुकदमा दाखिल करने का इरादे की पूर्वे नोटिस देना आवश्यक है, निरसन कर दिया जाना चाहिए¹।
- (ii) अन्य विशेष कानूनों में इसी के मजातीय उपबंधों का भी निरसन कर दिया जाना चाहिए²।
- (iii) केन्द्र और राज्यों में रिपोर्ट में निर्दिष्ट रूपरेखा के अनुसार आमबुड्समैन मुकदमों के विभाग का सृजन किया जाना चाहिए जिसके कार्य प्रस्तुत रिपोर्ट में उल्लिखित कार्यों की तरह हों। संक्षेप में यह योजना इस प्रकार है—हर एक नागरिक को यह आमबुड्समैन मुकदमा करने की छूट होनी चाहिए। जिसमें वह सरकार के विरुद्ध न्याय योग्य शिकायतों से राहत पाने के लिए पहुंच सके। नागरिक को मुकदमें बाजी करने की कोई बाध्यता नहीं होनी चाहिए—ऐसी मुकदमें बाजी जिसकी यदि सरकारी मशीनरी अधिक सक्षम अधिक सहानुभूतिपूर्ण और अधिक कल्पना पूर्ण होती, तो आवश्यकता ही नहीं होती। यह भी बाध्यता नहीं होनी चाहिए कि नागरिक कानूनी कार्यवाही करने के पूर्व बुड्समैन मुकदमा करे ही³।
- (iv) सरकार को हर एक मुकदमें के लिए 30 वर्ष की कालावधि प्रदान करने वाले परिसीमा अधिनियम, 1963 के अनुच्छेद 112 को हटा दिया जाना चाहिए।

(के० के० मैथ्यू)
चेयरमैन

(जे० पी० चतुर्वेदी)
सदस्य

(डा० एम० बी० राव)
सदस्य

(पी० एम० बक्शी)
अंशकालिक सदस्य

(वेपा पी० सारथी)
अंशकालिक सदस्य

(ए० के० श्रीनिवासमूर्ति)
सदस्य-सचिव

दिनांक 8 मई, 1984

1. अनुच्छेद 2.15 उपर।
2. अनुच्छेद 2.16 उपर।
3. अध्याय 3 उपर विशेषतः अनुच्छेद 3.4।
4. अनुच्छेद 4.4 उपर।